चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र

जब कृष्ण का भाई, बलराम, यह कहकर कि वह युद्ध में किसी की तरफ से न लड़ेगा, यात्रा पर चला गया था, तब रुक्मणि का भाई रुक्मि एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवों के पास आया। युधिष्ठिर ने यह सोचकर कि कृष्ण प्रसन्न होगा उसका खूब आदर सत्कार किया।

फिर रुक्मी ने जब सब सुन रहे थे अर्जुन से कहा-" मैं युद्ध में तुम्हारी मदद करूँगा। डरो मत। वैसे तो इन राजाओं की भी कोई जरूरत नहीं है। मैं अकेले ही युद्ध में, कृष्ण, द्रोण, कर्ण, भीष्म आदि, सब को मार दूँगा।" उसने शेखियाँ मारी।

अर्जुन ने हँसकर कहा-"मैंने पहले अकेले ही कौरवों को जीता था। खाण्डव दहन के समय, देवता और राजाओं को भी हराया था। इसलिये मुझे भय नहीं है। अब भी ऐसी बात नहीं है कि मेरा गुजारा न होगा, यदि मेरी कोई सहायता न करे। आप चाहें, तो कहीं और भी जा सकते हैं। अगर आप हमारे साथ ही रहना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

फिर रुक्मी दुर्योधन के पास गया। उससे भी वही कहा, जो अर्जुन से कहा था। दुर्योधन ने उसकी सहायता लेने से इनकार कर दिया और उसको भेज दिया। बलराम की तरह, रुक्मी ने भी युद्ध में भाग न लिया। शेष राजा किसी न किसी तरफ से लड़े।

उधर हस्तिनापुर में अन्धे राजा धृतराष्ट्र ने सञ्जय को बुलाकर युद्ध की खबरें

पूछा-"सञ्जय, मैं यह जानते हुये भी कि यह युद्ध गलत है, दुर्योधन का मन न बदल सका। न मालूम यह क्या विचित्र बात है, जब वह मेरे पास आता है, तो उसकी सारी बातें ठीक मालूम होती हैं। खैर, जो होना होगा, सो होगा ही। युद्ध में मर मिटना तो क्षत्रियों का धर्म है ही।" यह कहकर धृतराष्ट्र चिन्तित हो गया।

तब सञ्जय ने कहा-"जो गलती आपकी है, उसे दुर्योधन पर क्यों थोपते हैं? यदि आपको विधि में विश्वास है, अनर्थ हो जाने पर भी आपको चिन्तित नहीं होना चाहिये।" उसने उनको यों आश्वासन दिया।

इस बीच, दुर्योधन ने कर्ण, शकुनि, दुश्शासन आदि से विचार करके शकुनि के लड़के उलूक को बुलाकर कहा-"तुम हिरण्वती नदी के किनारे, पाण्डवों के शिविर में जाओ। एक-एक से मेरी तरफ से इस प्रकार कहो।" दुर्योधन ने उसको सविस्तार बताया कि युधिष्ठिर, कृष्ण, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और राजाओं से क्या क्या कहना था। ये बातें अहङ्कारपूर्ण

थीं। सुननेवालों को क्रुद्ध करने के लिये कही गई थीं।

उलूक पाण्डव शिविर में दूत होकर गया। उसने युधिष्ठिर से कहा-"मैं वे सब बातें कह रहा हूँ, जो उन्होंने मुझे आप सब से कहने के लिये कहा है। क्योंकि वे मेरी बातें नहीं हैं, इसलिये आप कृपा करके मुझ पर न बिगड़िये।" कहकर उसने एक एक से दुर्योधन के कहे हुये निन्दा भरे वाक्य कहे।

ये बातें सुनकर, केवल पाण्डव और अन्य राजाओं को ही नहीं अपितु कृष्ण

को भी बड़ा गुस्सा आया। कई की गुस्से से आँखें लाल हो गई। कई दान्त पीसने लगे। सब को कौरव सेना पर बुरी तरह गुस्सा आया।

भीम ने उलूक को गालियाँ दीं। परन्तु अर्जुन ने भीम को रोकते हुये कहा-"दुर्योधन से कहना कि उनकी इच्छा पूरी हो गई है। कल सवेरे युद्ध के लिये तैयार रहने को कहो।" उसके बाद, पाण्डवों ने और अन्य राजाओं ने, दुर्योधन को जो कुछ कहना था, उलूक से कहा। क्रोध के कारण वे काँप-से रहे थे।

अर्जुन ने दुर्योधन से यह कहने के लिए कहा-"अपने पराक्रम पर भरोसा करके दूसरों की सहायता पानेवाले हम मर्द हैं। तुम दूसरों के पराक्रम पर आधार होकर युद्ध में उतर रहे हो, इसलिये नराधम हो। यही कारण है कि तुम पुरुषोत्तम भीष्म को बलि देने के लिये, कौरव कुल का नाश करने के लिये इस युद्ध के लिये उतावले हो रहे हो।"

सबकी बातें सुनकर उलूक के चले जाने के बाद, युधिष्ठिर, अपने सेनाधिपति, धृष्टद्युम्न को लेकर, सेना को युद्ध क्षेत्र में

ले गया। धृष्टद्युम्न ने यह निर्णय किया कि कौन कौन उसकी सेना में से कौरवों के किन किन योद्धाओं से लड़ेगा। कर्ण का अर्जुन, दुर्योधन का भीम, शल्य का धृष्टकेतु, कृपा का उत्तमौज, अश्वत्थामा का नकुल, कृतवर्मा का शैल्य, सैन्धव का युयुधान, भीष्म का शिखण्डी, शकुनि का सहदेव, वृषसेन का अभिमन्यु मुकाबला करेंगे, यह निश्चय किया गया। तब धृष्टद्युम्न ने कहा-"मैं स्वयं द्रोण का मुकाबला करूँगा।" फिर उसने अपने योद्धाओं के व्यूह बनाये। वह तब युद्ध के प्रारम्भ की प्रतीक्षा करने लगा।

उधर कौरव शिविर में, दुर्योधन ने अपने सेनाधिपति भीष्म से कहा- "कृपया बताइये हमारी सेना और पाण्डवों में कौन कौन अतिरथ हैं, कौन कौन महारथ हैं, कौन एक रथ और कौन कौन कौन अर्धरथ हैं।"

भीष्म ने तब समझाकर बताया कि दोनों सेनाओं में कौन किस श्रेणी का था, और कौन इस युद्ध में कितनी कुशलता व अनुभव से लड़ेगा।

भीष्म ने कहा कि वह पाण्डवों को स्वयं न मारेगा। उसी तरह द्रोण को

होने पर भी, उसे मृत्यु का भय न होता। इस कारण वह महारथ मात्र ही है। उनकी राय में कर्ण का लड़का, बृषसेन, अलम्बुस, राक्षस महारथ थे। शकुनि एक रथ था। और पाण्ड़वों में अतिरथ हैं पाँचो पाण्डव, अभिमन्यु, धृष्टद्‌युम्न, उसका भाई सत्यजित, उत्तमोज, घटोत्कच, और महारथ हैं, द्रौपदी के पाँच पुत्र, उप पाण्डव, विराट, द्रुपद, शिशुपाल का लड़का धृष्टकेतु।

अर्जुन पर बहुत प्रेम है, वे अपने लड़के अश्वत्थामा से भी उसको अधिक चाहते हैं। वे हमेशा अर्जुन के शौर्य पराक्रम की प्रशंसा करते रहते हैं। वे अर्जुन को न मारेंगे। शल्य, पाण्डवों के बन्धु हैं, पर वे अपने भान्जे, नकुल और सहदेव को छोड़कर किसी और को मारने में आगा-पीछा न करेंगे।

भीष्म ने कौरवों की तरफ, दुर्योधन उसके निन्यानवें भाई, कृतवर्मा, शल्य, पुरिश्रव, सैन्धव, कृपा, द्रोण, बाल्हीक को अतिरथों में गिनाया। भीष्म ने बताया कि अश्वत्थामा भी अतिरथ होता, यदि अच्छा योद्धा

परन्तु भीष्म ने कर्ण के बारे में बताते हुये कहा-"मेरी राय में कर्ण केवल अर्धरथ है। क्योंकि वह अपने कवच कुण्ड़लों को खो बैठा है। यही नहीं इस पर परशुराम और ब्राह्मणों का शाप है। यह अर्जुन का मुकाबला करते जीवित न रह सकेगा।"

इन बातों का द्रोण ने समर्थन करते हुये कहा-"भीष्म! इन बातों में कुछ भी असत्य नहीं हैं। मैंने प्रति युद्ध में देखा है कि युद्ध के प्रारम्भ में कर्ण खूब उत्साह दिखाता है, फिर होते होते उसका उत्साह ठण्डा होता

जाता है। और ये एक अतिरथ के लक्षण नहीं हैं।"

यह सुन कर्ण को बहुत गुस्सा आया। उसने अपना गुस्सा भीष्म पर उगला-"ओ, बूढ़े, मौका मिलने पर मेरे बारे में अण्टसण्ट बकवास करता है। दुर्योधन को देखकर मैं यह बकवास सहता आया हूँ। लगता है कि तुम में बिल्कुल बुद्धि नहीं है। मुझ से पूछा जाय तो मैं तुझे ही अर्धरथ कहूँगा। यह मुझे ही नहीं, सबको मालूम है। दुर्योधन यह नहीं जान पा रहा है कि तुम कौरवों को धोखा दे रहे हो। अगर तुम शत्रुओं के आदमी न होते, तो अपनी तरफ से लड़नेवाले योद्धाओं के बारे में ऐसी बातें न करते।

बाल पक जाने मात्र से क्या किसी में इतनी अन आ जाती है कि यूँ ही बताये कि कौन अतिरथ है, कौन महारथ है? जैसे सूझा, वैसे रथ, अतिरथों का विभाजन करके, तुम उनमें मनमुटाव करना चाहते हो। द्वेष बढ़ाना चाहते हो।"

फिर कर्ण ने दुर्योधन से कहा-"राजा, यह भीष्म तुम्हें कहाँ मिला है? इस जैसा जिस सेना में मनमुटाव करता हो,

वह सेना किस काम की रहेगी? इस बूढ़े को तुमने सेनापति बनाया है। बाकी अपने बल पराक्रम के बल पर विजय पाकर सेनापति बनते हैं। इस कारण से जब तक यह भीष्म जीवित है, तब तक मैं युद्ध न करूँगा। इसके बाद शत्रुओं को मैं अकेला जीतूँगा।

भीष्म ने गुस्से में कहा-"अरे, नीच, युद्ध शुरू होनेवाला है, इसलिये तुम्हें छोड़े देता हूँ। तुम जैसे, मैं अपनी प्रशंसा आप नहीं कर सकता। मैं ही अकेला हूँ, जो परशुराम के अस्त्रों के सामने अचल खड़ा रहा। मैं ही काशी राजा की लड़कियों को लाते समय, सब राजाओं से अकेला लड़ा था। उनको जीता था। तुझे मारना कोई बड़ी बात नहीं है। सचमुच तेरे कारण ही कौरवों की यह दुस्थिति हुई है। अगर कर सको, तो उनकी यह हालत सुधारो।"

दुर्योधन ने मीठी-मीठी बातें करके भीष्म का गुस्सा ठण्डा किया। "बाबा, शिखण्डी भी औरों की तरह, शस्त्र लेकर हमसे लड़ रहा है, आप क्यों उसे न मारने के लिए कह रहे हैं? क्या इसका कोई विशेष कारण है?"

"दुर्योधन! मेरा नियम है कि मैं स्त्रियों से, व ऐसे लोगों से जो कन्या के रूप में पैदा हुए हों, फिर पुरुष हो गये हो, नहीं लड़ता। शिखण्डी कुछ दिनों तक कन्या था। फिर वह पुरुष हो गया। यही नहीं यदि तुम इस शिखण्डी का पूर्व जन्म वृन्तान्त सुनो तो तुम्हें मालूम हो जायेगा कि मैं उससे क्यों नहीं लड़ रहा हूँ।" कहकर भीष्म ने, दुर्योधन और उपस्थित राजाओं को शिखण्डी के पूर्व जन्म की कहानी सुनाई।

[१०]

[गरम पानी को नदी के पार जाने वाले महासर्प की पीठ पर से भाग कर चन्द्रमाँ फलों के बाग में पहुँचा। अन्धेरा होने के बाद जब वह पेड़ की टहनियों पर सो रहा था तब वह भैरण्ड पक्षियों द्वारा पैदा किये गए झञ्झा से, वहाँ से फिसला और एक भैरण्ड पक्षी के ऊपर जा गिरा। रात के समय अग्नि पक्षी वहाँ आया। उसने उन पक्षियों से प्रार्थना की कि बे कापालिनी को शंख के पास लायें। वे वह करने के लिए मान गए। बाद में:-]

अग्नि-पक्षी ने, जो सम्भाषण, भैरण्ड पक्षियों से किया था, उसे सुनकर चन्द्रवर्मा को बहुत आनन्द हुआ। काल सर्प की सहायता से उसे उस आश्चर्यजनक वृक्ष से फल खाने का मौका मिला था। और उस फल के खाने के कारण ही आज वह पक्षियों की भाषा भलीमाँति समझ सका था। शंख के पास हर तरह की मुसीबतें झेलते, सौ योजन पैदल जाने की अपेक्षा यही आसान था कि इन भैरण्ड पक्षियों के पंखों में बैठकर वहाँ पहुँचे। इस तरह रास्ता आराम से कटता और समय बचता।

वह अपने इस सौभाग्य पर फूला न समाता था। वह इस चिन्ता में था कि कब प्रातःकाल होता है और कब वह भैरण्ड पक्षियों के साथ सौ योजन दूर

पहुँचता है। उसने सोचा कि शंख जो चालें, कपालिनी को पकड़ने के लिये चल रहा था, वे निष्फल होंगी। कपालिनी उतनी नादान न थी। वह सब जानती बूझती थी। शायद वह उन भैरण्ड पक्षियों को पकड़वाकर काल सर्प को खिलवा दे।

चन्द्रवर्मा अभी इसी उधेड़बुन में था कि सवेरा हो गया। सूर्य की किरणों के मुख पर पड़ते ही भैरण्ड पक्षियों ने आँखें खोलीं, और पंख तेज़ी से फड़फड़ाकर अकाश में वे उड़ चले।

चन्द्रवर्मा उनके पंखों में छुपा हुआ था। उसे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि वे उत्तर दिशा की ओर जा रहे थे। देखते देखते वे कई पहाड़, नदी जङ्गल पार करते, एक पर्वत के पास पहुँचे। उनकी बातचीत से चन्द्रवर्मा को मालूम हुआ कि वह पर्वत, शंख का पर्वत ही था- उसका गम्यस्थान।

जिस पक्षी पर चन्द्रवर्मा बैठा था, उसने यकायक नीचे देखकर दूसरे पक्षी से कहा-"मित्र! झील देख रहे हो न! देखो, वह मगर....हाथी के बराबर मगर। मगर

का मांस खाये बहुत दिन हो गये हैं। तुरत वह पंख फड़फड़ाता तेज़ी से नीचे गया; बाण की तरह और झील की ओर कूदा।

इस प्रकार यकायक नीचे कूदने से चन्द्रवर्मा घबरा गया और वह पंख, जिसको उसने पकड़ रखा था, उसके हाथ से छूट गया। तुरत वह पक्षी के ऊपर से गिर गया। औधे मुँह हवा में तैरता सा झील में गिरने लगा। वह बहुत भयभीत था। काँप रहा था।

भैरण्ड पक्षी न जानता था कि चन्द्रवर्मा उसकी पीठ से गिरकर झील में गिर रहा था। उसकी नजर पानी की सतह पर तैरते हुए मगर पर थी। चन्द्रवर्मा की नज़र भी उसी ओर गई। वह यह जानकर घबराने लगा कि या तो भैरण्ड पक्षी उसे अवश्य निगल जायेगा नहीं तो झीलवाला भयङ्कर मगर।

इतने में झील से पानी, ताड़ के पेड़ के समान ऊँचा उठा। चन्द्रवर्मा पानी में गिरनेवाला था कि उसने सिर एक तरफ मोड़कर देखा। भैरण्ड पक्षी ज़ोर से

चिल्लाता उड़ा जा रहा था। उसके पैरों में हाथी के बराबर मगर एक कीड़े की तरह छटपटा रहा था। चन्द्रवर्मा यह दृश्य पलक भर ही देख बका। फिर वह झील में डूब गया। थोड़ी देर बाद जब वह ऊपर उठा तो उसने देखा कि छोटे मोटे मगर अन्धाधुन्ध इधर उधर भाग रहे थे। वही लहरें उठ रही थी।

चन्द्रवर्मा ने सोचा, शायद यह सब मेरे भले के लिए ही हुआ है। भैरण्ड पक्षियों को देखने के कारण मगर वहाँ से भागे जा रहे थे। यह नहीं होता तो वे चन्द्रवर्मा का हाथ या पैर पकड़ लेते, उसके टुकड़े टुकड़े करके निगल गये होते।

चन्द्रवर्मा जान बचाकर धैर्य से झील के किनारे की ओर जल्दी जल्दी तैरने लगा। झील के किनारे घने पेड़ थे। अगर वह उन पेड़ों में पहुँच गया तो उसका अन्दाज था कि वह मान्त्रिक शंख के नौकरों से भी बचकर सुरक्षित कहीं जा सकेगा।

अभी किनारा बीस तीस गज़ दूर था कि उसे पानी कुछ हिलता दिखाई दिया। तुरन्त मुख बाए, एक मगर अपनी पूँछ से पानी को इधर उधर मारता उसकी तरफ तेजी से आने लगा।

चन्द्रवर्मा को एक क्षण काठ-सा मार गया। उसका शरीर पथरा सा गया और डूबने-सा लगा। वह भय से चिल्लाया। फिर न जाने उसमें कहाँ से शक्ति आ गई। वह जैसे वैसे तैरता तट पर जल्दी जा लगा।

वह मगर जो उसे पापड़ की तरह खा जाता, उसके थोड़ी देर बाद किनारे पर लगा। परन्तु इस बीच चन्द्रवर्मा पानी

छोड़कर, पेड़ों की ओर भागा। मगर दान्त निकालकर कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा, फिर निराश तैरता.... झील के बीच में चला गया।

चन्द्रवर्मा थकान के कारण हाँफ रहा था। पेड़ के तने से सटकर, बैठकर वह आराम करने लगा। फिर उसे अपनी तलवार की याद आई। उसे डर लगा कि जब भैरण्ड पक्षी के ऊपर से गिरा था. तब वह उसे खो बैठा था। म्यान में से तलवार कुछ बाहर आ गई थी। चन्द्रवर्मा ने तलवार बाहर खींची, म्यान में जो पानी भर गया था, उसे भी निकाला। फिर आराम से तलवार को पोछकर म्यान में रख दिया।

"अभी तक तो भाग्य ने मेरा साथ दिया है। सौ योजन का फासला, बिना थकान के ही खतम हो गया। झील में गिरा और नगरों का भोजन हुए बगैर बचकर बाहर आ गया। आत्मरक्षण के लिए जो मेरे पास एक हथियार था, उसे भी न खोया। जब मुझे क्या करना है? सोचता सोचता चन्द्रवर्मा उठा। खड़ा हुआ।

धीमे धीमे थोड़ी दूर जाकर झाड़ियों को एक तरफ हटाकर उसने सामने की ओर देखा।

सामने, बहुत समीप एक ऊँचा पहाड़ था। उस पहाड़ की चोटी बहुत पैनी थी। ज्यों ज्यों नीचे आती जाती थी, वह मोटी होती जाती थी। समतल प्रदेश पर आते आते वह बहुत चौड़ी हो गई थी। दूर से देखने पर लगता था जैसे किसीने लट्टू को उलटकर रख दिया हो। पेड़-पत्ते थे, सुन्दर स्थल था।

"यह यही पर्वत है जिस पर मान्त्रिक शंख रहता है। मैं अब उसके पास पहुँच

गया हूँ। मुझे चाहिए उसका अपूर्व शक्तिवाला शंख, जो उसने अपने पूजागृह में रख रखा है। वह शंख नाग के गले से लटक रहा होगा। मुझे उस शंख को चुराकर, कपालिनी को देना है। वाह, अब तक सब ठीक हुआ है, पर अब इस शंख को कैसे लिया जाय! कैसे जाकर कपालिनी को दिया जाय?

चन्द्रवर्मा ने इस प्रकार सोचते हुए निश्वास छोड़ा। जब कपालिनी को वचन देकर, वह शंख के पर्वत के लिए निकला था, तब उसके सामने एक ही समस्या थी.... वह यह कि सौ योजन चलकर कैसे उस पहाड़ पर पहुँचा जाय! और अब उस पहाड़ तक पहुँचने के बाद, उसे यह समस्या सताने लगी थी कि कैसे उस शंख को लिया जाय।

चन्द्रवर्मा इस समस्या को किस तरह सुलझाया जाय, यह सोच ही रहा था कि उसको इतनी भयङ्कर आवाज सुनाई दी कि कान फूटते से लगते थे। चन्द्रवर्मा चौंका। इतने में वह भयङ्कर आवाज़ फिर सुनाई दी। इस बार चन्द्रवर्मा जान गया कि वह आवाज किसकी थी। वह आवाज़ पास के पेड़ों से आ रही थी। वह अग्नि पक्षी की आवाज थी। पिछली रात को, जब वह भैरण्ड पक्षियों से बातचीत करके उड़ा था, तब भी उसने ऐसी आवाज़ की थी यह आसानी से जाना जा सकता था।

चन्द्रवर्मा जान गया कि वह शंख के निवासस्थल के समीप था। अब उसको उसके सेवकों से अथवा उससे ही हानि होने की सम्भावना थी। फिर उसे याद आया कि अग्नि पक्षी को दिन में न दिखाई देता था। इसलिए उसको उससे

खतरा न था। परन्तु शंख के और सेवकों के बारे में!

चन्द्रवर्मा कुछ देर तक इन बातों के बारे में सन्देह करता करता रहा। फिर उसने हिम्मत बटोरकर सोचा कि आनेवाले खतरे के बारे में अभी सोचकर व्याकुल होना व्यर्थ है। फिर जाने कहाँ से उसके मन में विचित्र साहस और शरीर में शक्ति आ गई।

चन्द्रवर्मा ने पेड़ों पर से खोज-खोज कर फल खाये। झील की ओर बहनेवाले नाले में ठण्डा पानी पिया। फिर वह एक घने पेड़ पर चढ़ गया और उसकी टहनियों पर लेट गया। वह इसकी प्रतीक्षा करने लगा कि कब अन्धेरा होता है। उसका ख़याल था कि अन्धेरा होने के बाद, ही शंख के पर्वत पर चढ़ना अच्छा था। पकड़े जाने की कम आशङ्का थी।

थकान के कारण चन्द्रवर्मा थोड़ी देर में ही, उन टहनियों पर सो गया। अजीब अजीब सपने देखने लगा।

सूर्य जब ऐन सिर पर आया, तब भी पत्तों के कारण उस पर धूप न पड़ी। इस कारण सूर्यास्त के बाद भी, जब अन्धेरा

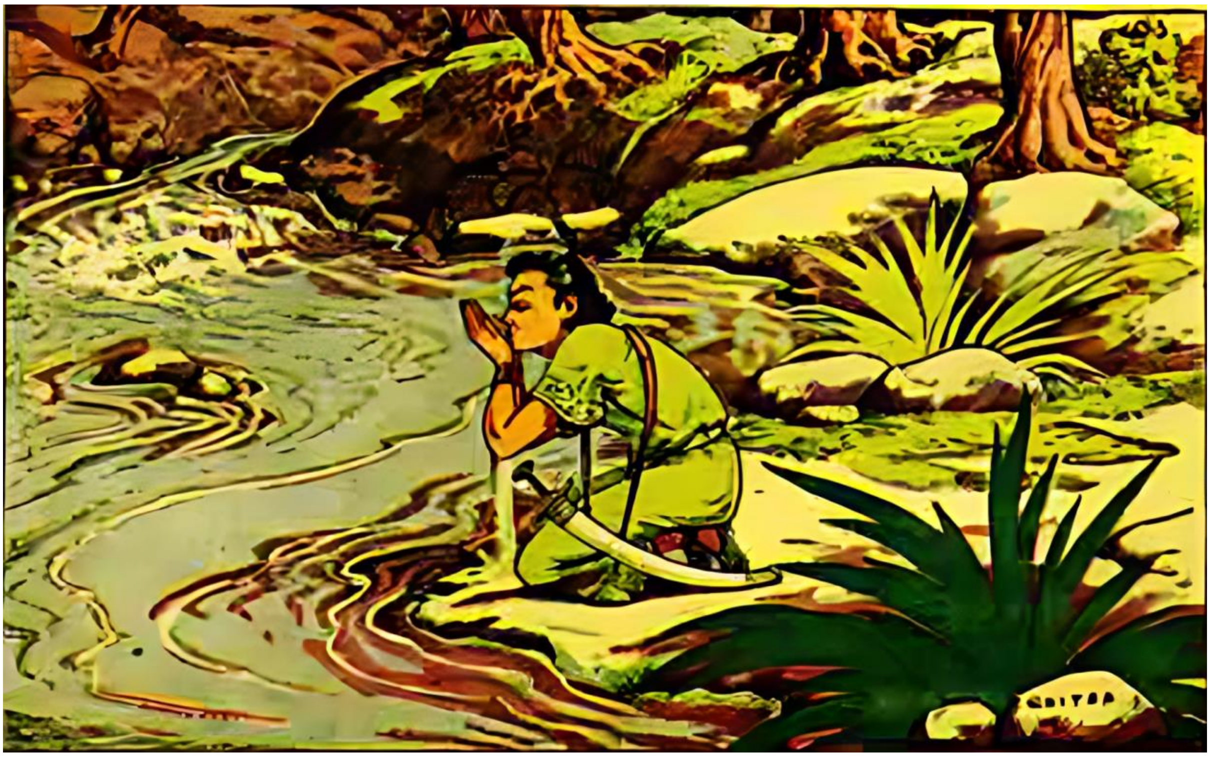

हो गया, तब भी वह वहाँ पड़ा पड़ा मस्त सो रहा था।

अकस्मात रात के समय, चन्द्रवर्मा ने आँखें खोली। चारों तरफ़ घना अन्धकार था। पास की झील में से धीमी-धीमी कोई आवाज आ रही थी। हवा के कारण पेड़ों की टहनियाँ टकराती और अजीब भावाज करती।

"लगता है, काफी देर हो गई है। यही अच्छा मौका है। पहाड़ पर चढ़कर पता लगाया जाय कि शंख के पूजा गृह में क्या है?" यह सोच चन्द्रवर्मा पेड़ पर से उतरा। अङ्ड़ाई ली। एक बार अपनी तलवार देखी। फिर चौकना हो वह चल दिया।

चन्द्रवर्मा अन्धेरे में, छोटी-छोटी झाड़ियों से बचता, पहाड़ की ओर थोड़ी दूर गया। उसकी आँखें, उस घने अन्धकार में अग्नि पक्षी को खोज रही थी। उसे न मालूम क्यों सन्देह हो रहा था कि पहली बिपत्ति उसपर उसी के कारण आनेवाली थी। अगर वह पक्षी उस समय वहाँ न हो तो वह आसानी से, सुरक्षित, शंख के पूजा गृह तक पहुँच सकता था। यह उसका विश्वास था।

चन्द्रवर्मा पहाड़ के पास जा रहा था कि उसे पास से किसी का कराहना सुनाई दिया। फिर उसे किसी ने "वर्मा" कहकर पुकारा।

चन्द्रवर्मा तुरन्त जान गया कि वह आवाज किसकी थी। वह "कपालिनी" कहता, उस ओर तेजी से चला, जिस ओर से वह आवाज़ आई थी।

(कभी है)

कवि – कीर्तिदेवी

एक कवि ने जिसको कीर्तिदेवी से प्रेम हो गया था उसको अर्पित करने के लिए कई गीतों की एक माला गूँथी। पर कीर्तिदेवी ने उसकी परवाह न की। औरों की तुच्छ मालायें पहनकर खुशी से इधर उधर घूमने-फिरने लगी। परन्तु वे मालायें मुरझा गई।

परन्तु कवि ने अपने गीतों की माला बनाना नहीं छोड़ा। उसका विश्वास था कि कभी न कभी कीर्तिदेवी उसको स्वीकार करने के लिए आयेगी, और सदा अपने गले में उसे पहनेगी।

परन्तु कीर्तिदेवी ने उसकी तरफ़ देखा तक नहीं।

एक दिन कवि ने उससे कहा-" मैने तुम्हारे लिये अमर मालायें तैयार की हैं। मेरे पास क्यों नहीं आती? क्यों नहीं उन्हें पहनती?"

"जल्दी न करो। मैं सौ वर्ष बाद तुम्हें मिलूँगी...." यह कह कीर्तिदेवी बिना खड़े हुये चली गई।

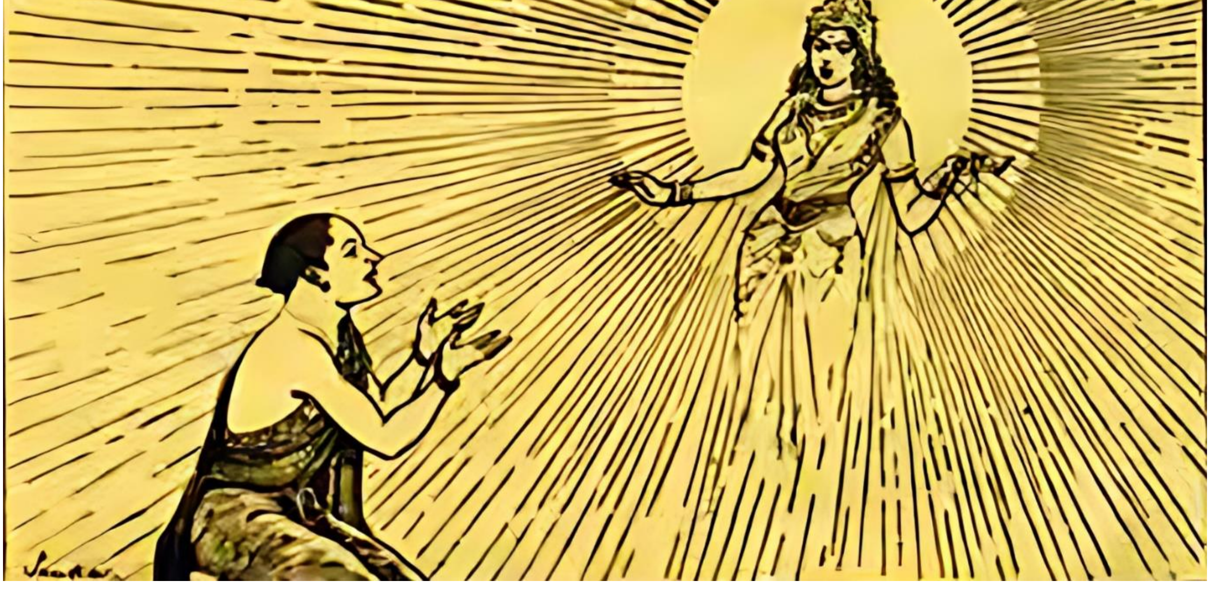

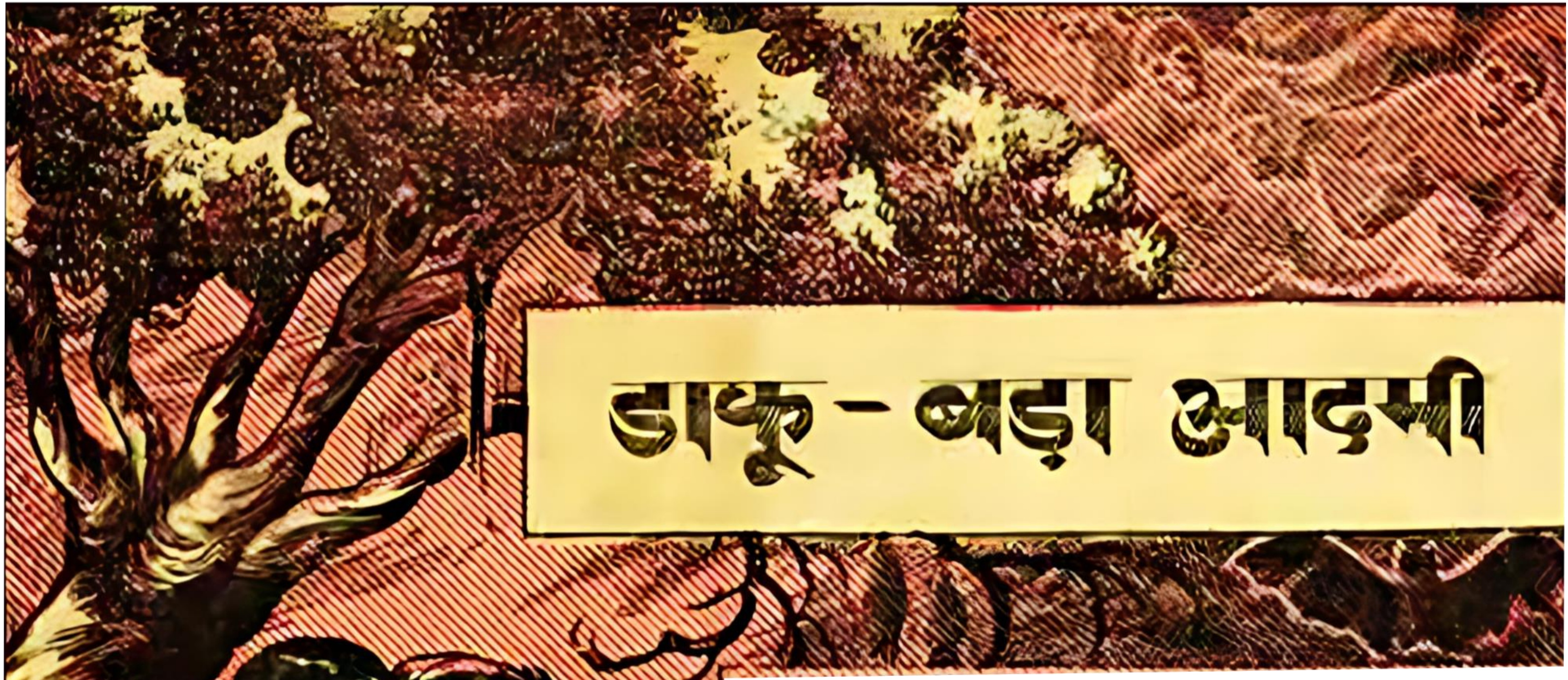

डाकू - बड़ा आदमी

विक्रमार्क तो हठी था ही। वह फिर पेड़ के पास गया। पेड़ पर से शव उतार कर कन्धे पर डाल, चुपचाप उपशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा, तुम्हें इस प्रकार कष्ट सहते देख, मुझे बड़ी दया आ रही है। तुम्हें थकान न मालुम हो, इसलिए मैं एक विचित्र नीति कथा सुनाता हूँ। सुनो।" उसने यह कहानी सुनाई।

एक समय था, जब कोशल देश और काशी देश की सीमाओं पर कुछ डाकू रहा करते थे। डाका मारना ही इन लोगों का पुश्तैनी पेशा था। खेतीबाड़ी करना व कोई और पेशा करना, ज्ञान कमाकर पेट भरना, वे बुरा समझते थे। इसलिए वे न पढ़ते- लिखते, न जमीन-जायदाद ही रखना चाहते।

इन डाकुओं का एक मुखिया था, ,जिसका नाम दुर्मुखी था। उसके सात लड़के थे। उनमें छः डाका मारते समय मारे गये थे। अब उसके साथ, उसका सबसे छोटा लड़का गङ्गाराम रहा करता था।

"बेटा, बाहुबल पर जीना हम लोगों का पारम्परिक सिद्धान्त है। उनकी जिन्दगी भी क्या जिन्दगी है, जो लकड़ी काट कर, घड़े कसोरे बनाकर मिट्टी खोद कर जिन्दगी बसर करते हैं। तुम मुझे यह वचन दो कि तुम उनकी तरह न जिओगे।" दुर्मुखी अपने लड़के से कहा करता। गङ्गाराम भी पिता के अनुरूप लड़का था। पिता जब डाका डालता तो वह भी उसकी मदद किया करता।

दुर्मुखी का एक घर था, घर तो क्या छोटा-मोटा किला-सा था। उसके एक तरफ दलदल थी और दूसरी तरफ धना जङ्गल। उस दलदल में से उनके घर का रास्ता, कुछ साथ के डाकुओं को तो मालूम था पर किसी अजनवी को न मालूम था। उस जगह दुर्मुखी ने बड़ा पक्का मकान बनवाया। उसके चारों ओर बड़े-बड़े पत्थरों से दीवार भी बनाई। लोहे के फाटक लगवाये।

चार दिवारी के और मकान के बीच के आहाते में उसके पशु, घोड़े वगैरह, रहते।

कोशल की राजधानी अयोध्या में राजा मर गया। उसकी कोई सन्तान न थी। इस कारण काशी का राजा ही कोशल देश का भी राजा हो गया। दो राज्य, जो शताब्दियों से अलग-अलग थे, एक राजा के परिपालन में आ गये। काशी राजा अपने नौकर-चाकरों को लेकर अयोध्या पहुँचा और वहाँ उसने बैभव से अपना राज्याभिषेक करवाया।

उसी दिन सीमा के डाकुओं ने खूब डाके भी डाले। अधिकारियों ने आकर राजा से कहा-"महाराज, काशी और कोशल की सीमावाले डाकू फिर सिर उठा रहे हैं। डाका मार रहे हैं।"

"अब काशी और कोशल के बीच में कोई सीमा नहीं है। वह जगह अब हमारे राज्य के ठीक बीच में है। वहाँ रहनेवाले डाकुओं को निर्मूल कर दो।" राजा ने अपने सेनापति को आज्ञा दी।

सेनापति पाँच सौ आदमियों को साथ लेकर सीमा तक गया और वहाँ डाकुओं को पकड़ने लगा। कई डाकुओं ने सेनापति से घूस लेकर और डाकुओं को पकड़वाने में मदद की। जो जो डाकू जब जब मिला, तब तब सेनापति ने उसका सिर कटवा दिया।

यह खबर दुर्मुखी को मिली। उसने अपने लड़के से कहा-"बेटा, गङ्गा! दुनिया में उथल-पुथल होने जा रही है, अब धर्म न रहेगा। बहादुरों के लिए अपने बाहुबल पर जीने के दिन लद गये, अब किसी की आज्ञानुसार जीने के दिन आ रहे हैं। जहाँ बल, साहस थे, अब वहाँ आकार, ओहदे होंगे। परन्तु तुम यह वचन दो कि तुम बहादुरी से जिओगे।"

बाप बेटे जब घर की छत पर बैठे बातें कर रहे थे, तो उस समय दूरी पर उन्हें कुछ घुड़सवारों का आना दिखाई दिया।

"पिताजी, हमारे पर की ओर कुछ सैनिक आ रहे हैं।" गङ्गाराम ने कहा।

"दलदल में से कैसे आयेंगे? एक-दो ही बिना रास्ता मालूम किये नहीं आ सकते हैं, यह सारी की सारी सेना कैसे

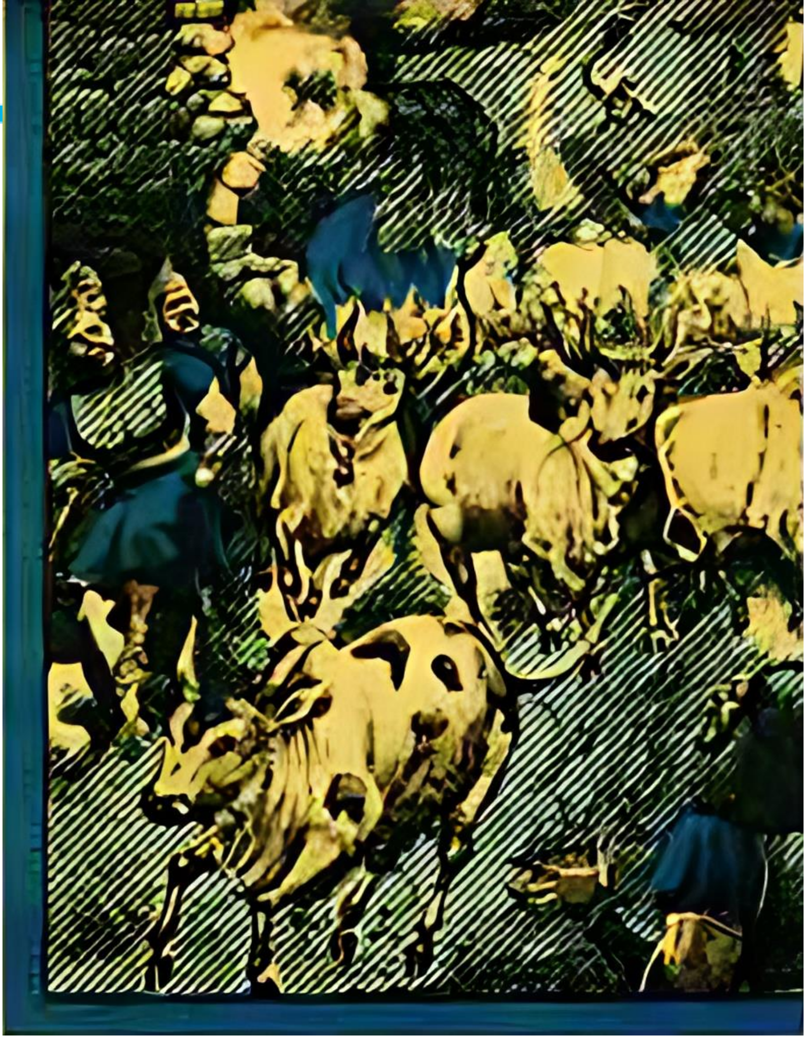

आ सकेगी? तुम घबराओ मत।" दुर्मुखी ने कहा ।

"नहीं, पिताजी! उन्हें कोई रास्ता दिखा रहा है। जो सबके सामने घोड़े पर आ रहा है, उसे अच्छी तरह रास्ता मालूम है। कहीं लोग उसे पहचान न लें, उसने अपना सिर ढक रखा है।" गङ्गाराम ने कहा।

"कोई नीच हमें धोखा दे रहा है। बेटा, जरा मेरा धनुष-बाण तो लाओ।" दुर्मुखी ने कहा।

सैनिकों और सेनापति ने दुर्मुखी का घर घेर लिया।

"हुजूर, गरीब हूँ। जब इतने अतिथि आये हैं, तो मैं क्या करूँ? आपके घोड़ों के लिए मेरे पास दाना-पानी भी तो नहीं है।" दुर्मुखी ने सेनापति से कहा।

"डाकुओं के सरदार दुर्मखी तुम ही तो हो? मेरे बन्दी हो जाओ; नहीं तो तुम्हारा, तुम्हारे घर का, सब का सर्वनाश कर देंगे।" सेनापति ने कहा।

दुर्मुखी ने सेनापति से कहा-"मैं चोर नहीं हूँ। मैंने लुके छुपे कुछ नहीं किया है। गरीबों को मैंने नहीं सताया है। जब जब बन पाया है मैंने उनकी मदद ही की है। अनाथ स्त्रियों और बच्चों को मैंने कभी नहीं सताया है। मैं नहीं जान पा रहा हूँ कि आप मुझे क्यों कैद करना चाहते हैं।"

सेनापति ने उसकी न सुनी। उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि वे घर की चार दिवारी तोड़ दें। तब सूर्यास्त हो चुका था। थोड़ी देर में अन्धेरा होने वाला था।

जब सैनिकों ने चारदिवारी का एक भाग तोड़ दिया तब गङ्गाराम ने घर

पर से जलती मशाल पशुओं के बीच फेंकी। पशु डर गए। डर के कारण घोड़े सैनिकों की तरफ भागे। कुहराम मच गया।

उस समय दुर्मुखी गङ्गाराम को लेकर नीचे उतर आया, उसने अपनी पत्नी और लड़के से विदा लेकर कहा-"तुम आदमियों की तरह जीना। मैं अगर हो सका जिन्दा ही बाहर जा निकलूँगा। अगर जिन्दा रहा तो कभी न कभी मिलूँगा ही; नहीं तो यह आखिरी दर्शन है।" कहते हुये दुर्मुखी ने अपना गण्डासा लेकर गङ्गाराम से कहा-"बेटा, चुपचाप दरवाजा खोलो। मैं बाहर जाऊँगा।"

बाहर सैनिक चिल्ला रहे थे-"बाहर आओ, नहीं तो आग लगा देंगे।" ठीक उसी समय अचानक दरवाजा खुला। गण्डासा घुमाता, बाण की तरह दुर्मुखी सैनिकों के बीच आ पड़ा। उसे कोई न रोक सका। और तो और जो उसके पास जा सके वे उसके गण्डासे के शिकार हुए।

सैनिकों से निकलकर दुर्मुखी दलदल से बचकर जङ्गल में भाग गया। कुछ घुड़सवारों ने अन्धेरे में उसका पीछा किया।

उनमें से एक भी जीवित वापस न गया। सब के सब दलदल में फँस गए। दुर्मुखी बचकर भाग गया।

इस बीच सैनिकों ने दुर्मुखी के घर पर हमला किया। अन्दर घना अन्धेरा था। जिस नकाबधारी ने दलदल में से सैनिकों को रास्ता दिखाया था वह कहीं से एक मशाल लाया। दरवाजे के पास गङ्गाराम खड़ा था। उसे यह देख बड़ा गुस्सा आया। उसने दीवार पर से गण्डासा निकाला और उसके हाथ पर जोर से चोट की। उस चोट से मशाल ही न गिरी, उस आदमी के हाथ की अंगुलियाँ भी कट गई। खून बहने लगा।

आखिर सैनिकों ने दुर्मुखी की पत्नी और लड़के को कैद कर लिया। उसके घर को आग लगाकर वे अयोध्या वापस चले गए।

वहाँ अदालत में दुर्मुखी की पत्नी व गङ्गाराम को कोई भी सजा न दी गई। "जब बाज़ उड़ गया हो तो इन परिन्दों को पकड़ कर लाने से क्या फायदा?" न्यायाधिकारी ने उनसे पूछा। "मेरे पति को पकड़ लिया। मेरा घर जला दिया। हम अब कहाँ जायें?" कहकर दुर्मुखी की पत्नी रोई।

"मैं फिर मकान बनाऊँगा। आओ माँ।" कहकर गङ्गाराम अपनी माँ को उस जगह ले गया जहाँ पहले उनका घर था। वहाँ माँ बेटे ने एक कुटिया बना ली। पर खाने के लिए कुछ न था। खरगोश जैसे जानवरों को गङ्गाराम मार कर खाने के लिए लाता। फिर गङ्गाराम की माँ बीमार पड़ी और एक सप्ताह में चल बसी। गङ्गाराम बिलकुल बेसहारा हो गया। उसने अपनी माँ को पास में ही दबा दिया।

गङ्गाराम की स्थिति सबको मालूम हो गई। पास में रहने वाले रईस को उसे देख दया आई। उसने उसको अपने पशुओं की देखभाल करने के लिए वेतन पर रख लिया।

गङ्गाराम का जीवन पूरी तरह बदल गया। उसके साथ उसके विचार भी बदल गये। परन्तु कभी कभी अपने शत्रुओं से बदला लेने की सोचता। गङ्गाराम अब जानता था कि वह आदमी कौन था, जिसने उस दिन मुख ढक कर सैनिकों की मदद की थी। उसका नाम रुद्र था। उसका घर दुर्मुखी के घर के पास ही था उसके दायें हाथ में दो अंगुलियाँ ही थीं।

जब कभी रुद्र को देखता तो गङ्गाराम का खून खौल उठता। परन्तु गङ्गाराम ने जल्दबाजी में कुछ न किया।

बहुत साल गुजर गए। गङ्गाराम की उम्र पच्चीस वर्ष की थी कि कोई उत्सव आया। दङ्गल हुए। रुद्र और गङ्गाराम का मल्लयुद्ध हुआ। कुश्ती में जब गङ्गाराम नीचे था और वह ऊपर। तब रुद्र ने कहीं से एक चाकू निकाला और गङ्गाराम के पेट में भोंक दिया। वह दुबारा भोंकनेवाला था कि गङ्गाराम ने उसके हाथ से चाकू ले लिया और उसकी छाती

में भोंक दिया। मगर वह डर गया। यह सोचकर कि इस गलती के करने पर, सब मिलकर उसे मार देंगे, वह वहाँ से भाग गया।

वह रात दिन भागकर थोड़े दिनों बाद एक दूर देश में गया। वहाँ एक धर्मशाला में ठहरा। उसी दिन वहाँ एक बूढ़ा भिखारी भी आया। भिखारी को अपनी ओर गौर से देखता देख, गङ्गाराम को बुरा लगा। अगले दिन जब वह जा रहा था, तब भिखारी भी उसके साथ आने लगा।

"तुम कौन हो तुम्हें मुझ से क्या काम है?" गङ्गाराम ने भिखारी से पूछा।

"तुम शायद दक्षिण देश जा रहे हो। मैं भी उसी ओर जा रहा हूँ। आखिर आदमी ही तो आदमी का साथी है, अच्छा, खैर, तुम्हारा नाम क्या है?" भिखारी ने पूछा।

"मेरा नाम गङ्गाराम है।" गङ्गाराम ने कहा।

"तुम्हारे पिता का नाम क्या है?" भिखारी ने फिर पूछा।

गङ्गाराम ने जब जवाब दिया, तो उस भिखारी ने उसे गले लगाकर

कहा-"बेटा, मैं तेरा पिता ही हूँ। क्या तुम्हारी माँ ठीक है? तुम कहाँ जा रहे हो? क्यों जा रहे हो?" उसने पूछा।

गङ्गाराम ने पिता को सब कुछ बताया। "बेटा, सिर्फ इसीलिए भागे जा रहे हो? जाने की जरूरत नहीं। हमारे पास इतना सोना है कि हम किसी भी अन्याय को ठीक कर सकते हैं। मैं बहुत-से देश घूमा-फिरा। सैनिक का काम करके मैंने काफी कमाया भी है। कोई यह न जाने कि मेरे पास इतना धन है, इसलिए मैंने यह भिखारी का वेष धारण कर रखा है।

आओ, चलो चलें। चिन्ता न करो।" दुर्मुखी ने कहा।

जैसा दुर्मुखी ने कहा था, वैसा ही हुआ। गङ्गाराम की चोट के कारण रुद्र मरा नहीं। अधिकारियों ने घूस लेकर, रुद्र ने जो शिकायत गङ्गाराम पर कर रखी थी, यह कहकर रद्द कर दी थी कि कोई गवाह न था। यह जानकर कि दुर्मुखी काफी धन लेकर आया है... बड़े बड़े लोगों ने उससे दोस्ती की। उस रईस ने, जिसने गङ्गाराम को नौकर रखा था, उसके साथ अपनी लड़की की शादी भी की।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा-"राजा, मुझे एक सन्देह है। जब वह अपने विचार में अच्छे ढङ्ग से जी रहा था, तब अधिकारियों ने दुर्मुखी को क्यों दोषी माना? फिर जब उसने पैसा कमाकर न्याय की आँखों में धूल फेंकी तो लोगों ने उसको बड़ा आदमी क्यों समझा? अगर तुमने इस प्रश्न का जानबूझकर उत्तर न दिया तो तेरा सिर फूट जायेगा।"

"इसमें कोई फायदा नहीं है, अगर कोई यह सोचे कि वह नीतिपूर्वक जीवन बिता रहा है। जब समाज में नैतिक परिवर्तन होता है, तब मनुष्य को भी अपनी निजी व्यवहार में उसके अनुसार परिवर्तन करने चाहिए। दुर्मुखी जब डाकू था, तब वह अपने बाप दादाओं की परिपाटी ही निभा रहा था। जब धन लेकर वह वापस आया, तब वह उस समय के समाज की परिपाटी का पालन कर रहा था। इसीलिए एक दिन का डाकू बड़ा आदमी बन गया।" विक्रमार्क ने कहा।

राजा का इस प्रकार मौन भङ्ग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)

जब सिद्धार्थ ऊरुवेल बन में तपत्या कर रहे थे, उनके पास पाँच ब्राह्मण आये। उनके नाम, कौडिन्य, भद्राजी, बप्र, महनय, और अश्वाजी थे। वे यही जानकर आये थे कि वे बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रहे थे। वे सिद्धार्थ की सेवा शुश्रुषा करने लगे। वे रोज सोचते-कहते-"ये जरूर कल बुद्ध होगे।" उनकी सेवा शुश्रूषा के कारण सिद्धार्थ का समय सुख से कटने लगा।

"तपस्वी के लिए सुख ठीक नहीं, शरीर के तपने पर ही तपस्या सफल होती है। तपस्या जितनी कठिन होती है, उतनी जल्दी ही सफलता मिलती है। मनुष्य के लिए रत्ती भर भोजन भी काफी है।" यह सोच सिद्धार्थ उपवास व्रत आदि करने लगे।

इन उपवासों के कारण, सिद्धार्थ का गोरा सुनहला रङ्ग, सुखकर काला हो गया। उनके शरीर के बत्तीस शुभ लक्षण भी न दीख पड़ते थे। वे बहुत बलवान थे, पर वे तब खड़े भी न हो पाते थे। उनका पेट, पीठ से लग गया था। एक दिन रात को, तीसरे पहर, निर्वलता के कारण वे बेहोश भी हो गये।

[एक ग्रीक पुराण कथा]

"विचारा महाराजा का लड़का है। बुद्धत्व के लिए तपस्या शुरू तो की पर तपस्या सफल न हुई। अब बिचारे के प्राण जा रहे हैं।" वन में रहनेवाले तपस्वियों ने कहा।

यह खबर कि सिद्धार्थ मर गये हैं कपिलवस्तु भी पहुँची। शुद्धोधन महाराजा ने इस पर विश्वास न किया, उनका विश्वास था, क्योंकि सिद्धार्थ सम्राट न बने थे, इसलिये वे बुद्ध बनेंगे।

वस्तुतः सिद्धार्थ मरे न थे। होश आते ही, वे भिक्षा पात्र लेकर निकल पड़े। वे जान गये कि व्रत उपवासों द्वारा बुद्धत्व प्राप्त करना असम्भव था। उन्होंने जब भोजन करना प्रारम्भ किया तो सूखा शरीर फिर भरने लगा। उनके शुभ लक्षण पहले की तरह शरीर पर दिखाई देने लगे।

परन्तु सेवा-शुश्रुषा करनेवाले ब्राह्मणों ने कहा-"यह तपस्वी छः वर्ष कठोर तपस्या करने के बाद भी बुद्धत्व न प्राप्त कर सका। फिर से पेट भर खाने लगा है।" और वे उन्हें छोड़ चले गये।

उन दिनों, ऊरुवेल वन के पास सेनानी नाम का एक उत्तम क्षत्रिय, एक गाँव में

रहा करता था। उस ग्राम का नाम भी सेनानी था। उसकी एक लड़की थी। उसका नाम सुजाता था। उसने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि यदि उसको अच्छा पति मिला और पहले पहल लड़का पैदा हुआ, तो वह अजापाल देवता पर नैवेद्य चढ़ायेगी। सुना जाता था कि यह अजापाल देवता "नुगा" पेड़ पर रहा करता था।

सुजाता की इच्छा के अनुसार काशी के रहनेवाले एक उत्तम क्षत्रिय के साथ उसका विवाह हुआ और जल्दी ही उसके एक लड़का भी पैदा हुआ। इसलिये वैशाख पूर्णिमा के दिन, उसने गौ के दूध से खीर तैयार की। और अपनी नौकरानी पूर्णा से पेड़ के पास जगह साफ करने के लिए कहा।

जब पूर्णा पेड़ के पास गई तो सिद्धार्थ उस पेड़ के नीचे बैठे थे। उनके शरीर से कान्ति निकलती देख, पूर्णा ने सोचा कि वे ही देवता थे। वह घर भागी भागी गई। उसने सुजाता से कहा-"मालकिन, आपका नैवेद्य लेने के लिए स्वयं अजापाल देवता आये हैं। पेड़ के नीचे बैठे हैं।"

यह सुन सुजाता ने सन्तुष्ट हो कर पूर्णा से कहा-"अगर यह सच है तो, मैं तुझे अपनी लड़की मानकर पालूँगी, पोसूँगी और तुझे अच्छे अच्छे गहने दूँगी।" उसने अपने अच्छे कपड़े पहने, अपने कीमती गहने लगाये एक सोने के पात्र में खीर लेकर, अपनी नौकरानियों को लेकर पेड़ के पास गई। सिद्धार्थ को देखते ही वह बहुत प्रसन्न हुई। उसके सामने खीर रखकर उसने कहा-"मेरी इच्छा पूर्ण हो गई है, उसी तरह आपकी इच्छा भी पूरी हो।"

सिद्धार्थ के खीर खाने के बाद, हाथ धोने के लिए उनको सुगन्धित जल देकर सुजाता अपने घर वापस चली गई। सिद्धार्थ भी वहाँ से उठकर, निरञ्जर नदी के पास गये। सुप्रतिष्ठित नाम की जगह पर उन्होंने स्नान किया। फिर वे उस नदी के किनारे वाले जङ्गल में चले गये। दिन भर एक शाल वृक्ष के नीचे बैठे रहे।

अन्धेरा होते ही, सिद्धार्थ शाल वृक्ष के नीचे से उठकर एक बढ़ के पेड़ की ओर जाने लगे। रास्ते में उन्हें एक ब्राह्मण मिला। उसने उनको दूब की घास दी। सिद्धार्थ ने बढ़ के चारों ओर देखा। पूर्व की ओर कुछ सम प्रदेश देखकर दूब घास वहाँ बिछाकर वे बैठ गये।

सिद्धार्थ का बुद्धत्व पाने का समय चूंकि पास आ गया था, इसलिये मन्मथ ने उनके मन को विचलित करना चाहा। पिछले छः सालों से मन्मथ इसी काम पर लगा हुआ था। परन्तु वह सफल न हुआ था। इस बार उसने और जोर से प्रयत्न करने की ठानी। इसलिये वह अपने नौकर चाकरों को लेकर, अनेक आयुधों को लेकर, सेना सहित इस प्रकार आया, जैसे

रेत बरसाया। और भी कई तरह से उसने बुद्ध को नाश करना चाहा। पर असफल रहा। फिर उसने, अपने गिरि मेखला नाम के हाथी पर चढ़कर, सिद्धार्थ पर अपना चक्र फेंका। वह भी व्यर्थ गया।

मन्मथ पराजित होकर भाग निकला। पिता को पराजित देख कर, मन्मथ की तीन लड़कियों ने सुन्दर वस्त्र धारण किये और सिद्धार्थ को अपने पाश में डालने का प्रयत्न किया। उन्होंने पूछा- "इतने सुन्दर हो। क्यों जङ्गल में तपस्या कर रहे हो? क्या तुम्हारी पत्नी नहीं है? क्या उससे झगड़कर आये हो? या किसी ने तुम्हारा प्रेम ठुकरा किया है?" परन्तु सिद्धार्थ ने उनकी ओर देखा तक न।

इसलिये वे भी चली गईं। मन्मथ को पराजित करते ही सिद्धार्थ को बुद्धत्व मिल गया। शतकोटि ब्रह्माण्डों में, सब समयों में, जितनी बातें हो गई थीं वे सब उनकी आँखों के सामने आ गईं। वे यह भी जान गये कि प्राणी क्यों जन्म जन्म के फेरे में फैसा हुआ था। अगले दिन सवेरा होने से पहले उनकी

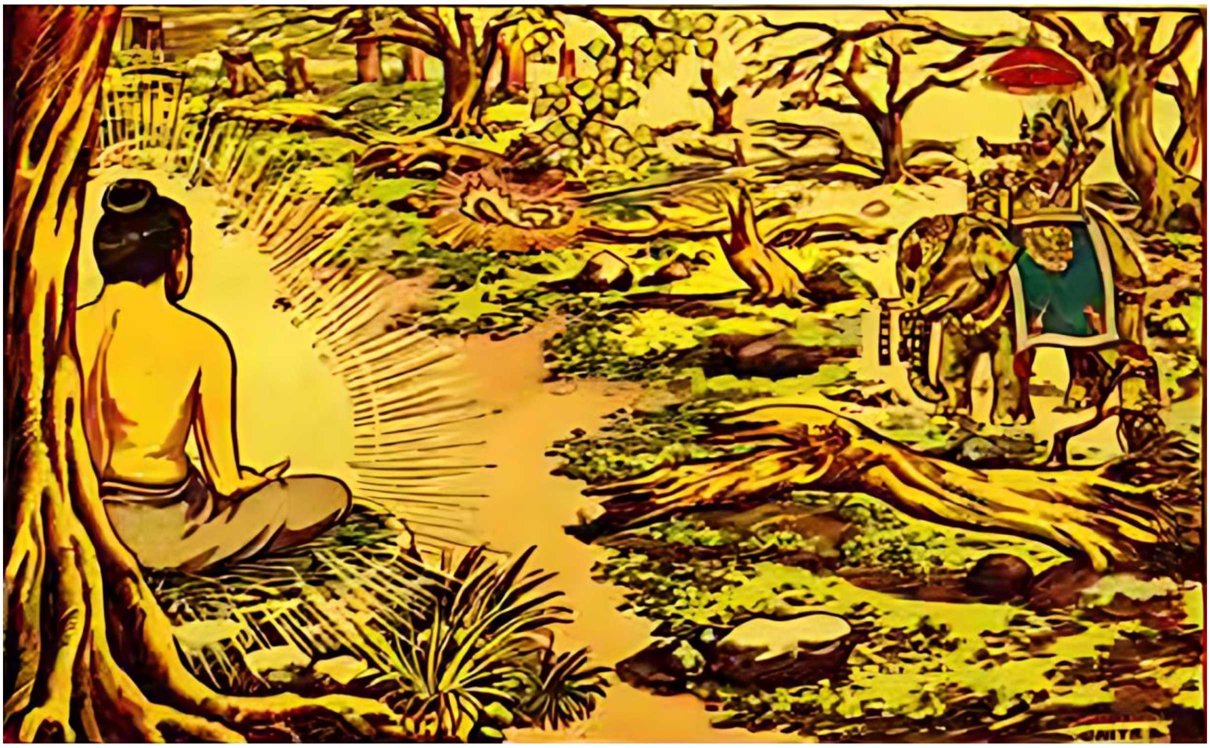

बाकी इच्छायें भी निर्मूल हो गई। वे बुद्ध बन गये। उनके शरीर से छः प्रकार के रङ्गों की किरणें निकलने लगीं। सिद्धार्थ के जन्म के समय जो अद्‌भुत बातें हुई थीं, वे फिर हुई।

बुद्ध सप्ताह भर उस बढ़ के पेड़ के नीचे बैठे रहे। क्योंकि उस वृक्ष के नीचे, वे बुद्ध बने थे, इसलिये उस वृक्ष का नाम बोधिवृक्ष पड़ा।

फिर बुद्ध वायु में उठे, वहाँ एक क्षण रह कर, बोधिवृक्ष के ईशान्य दिशा में, जमीन पर उतरे। उन्होंने सात दिन तक बिना पलक मारे लगातार, बोधि वृक्ष को सामने रखकर आराधना की। उस प्रदेश को अनिमिष लोचन चैत्य कहते हैं।

फिर बुद्ध, अपनी जगह से बोधि वृक्ष तक आगे पीछे, सप्ताह भर चलते रहे। जहाँ वे चले थे उस प्रदेश को चंक्रमण चैत्य कहते हैं।

फिर बुद्ध ने बोधिवृक्ष के वायव्य दिशा में बैठकर, सप्ताह पर धर्म के बारे में विचार किया। जहाँ वे यह करने के लिए बैठे थे, उसको रतन घर चैत्य कहते हैं। बुद्ध पाँचवा सप्ताह, अजापाल वृक्ष के नीचे, निर्वाण का आनन्द लेते बिताया। छठा सप्ताह, मचलिन्द झील के पास, एक पेड़ के नीचे बिताया। उस सप्ताह खूब वर्षा हुई। कहा जाता है तब मचलिन्द झील से नागराज आया और अपना फण छाते की तरह उसने बुद्ध पर रखा ताकि उन पर वर्षा न हो। यह सप्ताह बुद्ध ने ध्यान में काटा। सातवाँ सप्ताह वे जङ्गल में पत्थरों पर लेटे। इन सात सप्ताहों में उन्होंने किसी प्रकार का भी भोजन न छुआ।

(अभी है)

[४]

तीसरे दिन आधी रात के समय, एक सैनिक, खालीद के तम्बू में हड़बड़ाता घुसा। उसके हाथ में पेटी का टुकड़ा था। खालीद ने उस टुकड़े को उसके हाथ से तुरन्त ले लिया। उसने उस सैनिक को सोने की मोहरें देते हुए पूछा-"यह तुम्हें कैसे मिला?"

"यहाँ से उत्तर में एक दिन का रास्ता है। हम शत्रुओं के बारे में जानकारी पाने के लिए घूम रहे थे कि चार सीरियन, एक गड़रिये की मदद से रास्ता मालूम करते वहाँ आये। जिस घोड़े पर गड़रिया सवार था, उसके माथे पर यह टुकड़ा बन्धा हुआ था। हमने उस पर हमला करके इसको ले लिया।" सैनिक ने कहा।

सैनिक के जाने के बाद खालीद ने उस टुकड़े को गौर से देखा। उसे दो तहों में रखकर सिया गया था। उसने तहें खोलकर उसमें लिखा सन्देश पढ़ा। "जवाबल उत्तर में, दो रोज के रास्ते पर है। कल, मान्यूल, जबाबल से छः रोज पीछे था। जब मैं जबाबल की सेना से मिला वह और तीन दिन पीछे था। वह जब दो रोज पीछे हो तब जबावल के साठ हज़ार आदमियों को मार देना होगा।"

खालीद ने तुरत हुक्म दिया। दस हज़ार घुड़सवार, पन्द्रह हज़ार ऊँट सवारों को उत्तर की ओर भेजा। जबाबल की सेना को नष्ट करके, पाँचवें रोज सवेरे, अपने डेरों में वे लौट आये।

कुछ दिनों बाद एक और पेटी का टुकड़ा खालीद के सैनिकों के हाथ लगा। एक काफिला खालीद की डेरों की तरफ आ रहा था। उस काफिले के पहले ऊँट के माथे पर यह टुकड़ा बँधा हुआ था। उस काफिलेवाले ने कहा-

"यह काफिला मान्यूल की सेना को रसद पहुँचा रहा था। उन्हें एक लड़का मिला। उसने कहा-'अगर तुमने यह रसद मान्यूल को दी, तो वह भाड़ा तो देगा नहीं, तुम्हें कैद भी कर लेगा। तुम दक्षिण में, खालीद की सेना के पास जाओ। मैं तुम्हारे पहले ऊँट के माथे पर यह ताबीज बाँधता हूँ। इसके कारण तुम्हें फायदा होगा। और तुम्हारी इज्जत बढ़ेगी।" काफिला उसकी बात मानकर सीधा खालीद के शिविर पर चला आया। उसमें अनाज ढ़ोनेवाले डेढ़ सौ ऊँट थे। खालीद ने वह टुकड़ा खोलकर पढ़ा-"मान्यूल के सैनिकों के पास रसद नहीं है। उनकी रसद पाँच छः दिन के फासले पर है।"

मान्यूल की सेना को रसद न पहुँचने की जो चाल कनाना ने चली थी, उसे जानकर खालीद हँसा।

*   *   *   *

उसी दिन रात, मान्यूल ने अपनी सेना के साथ खालीद के शिविर के उत्तर में अपना डेरा डाला। मैदान के बीच में एक पहाड़ी पर, उसने अपना एक किला-सा बनाया। वहाँ से मुसलमानों की सारी सेना दिखाई देती थी।

"तुम सवेरे हमारे डेरे में आकर हमसे सन्धि की बातचीत करो। यह भी वचन दो कि तुम सीरिया में कभी पैर न रखोगे, तभी तुम्हारी सेना सुरक्षित वापस पहुँच

सकेगी।" मान्यूल ने अगले दिन मुसलमान सेनापतियों को यह खबर भेजी।

सब खुश हुये। पर खालीद ने कहा- "जवाबल को मत भूलना।" उसका ख्याल था कि अगर मूखे सैनिकों पर तुरंत हमला किया गया तो विजय अवश्य होगी।

आधा घण्टा बाद मुसलमान सेना युद्ध के लिए निकल पड़ी। उस दिन सीरिया के मैदान में एक ऐसा युद्ध हुआ जिसके बारे में न कभी कहा गया था, न सुना ही गया था। तीन चार बदावी की सेना, मामूली धाबे का मुकाबला न कर सकी और पीछे हट गई। तीसरी बार उनकी स्त्रियों, बच्चों ने प्रोत्साहित करके उन्हें मैदान में भेजा।

जब अन्धेरा हुआ तो ऐसी हालत थी कि किसी की विजय न हुई थी। परन्तु बहुत से बदावी, ग्रीक सेना के हाथ पकड़े गये। उनमें से कई ने ग्रीक सेना में, कनाना को घूमते-फिरते पहचाना। यह जानकर उन्हें बड़ा गुस्सा आया कि जवाबल की सेना के नष्ट किये जाने के बाद, उनके साथ कनाना भाग गया था। और अब मान्यूक की सेना में भरती हो गया था।

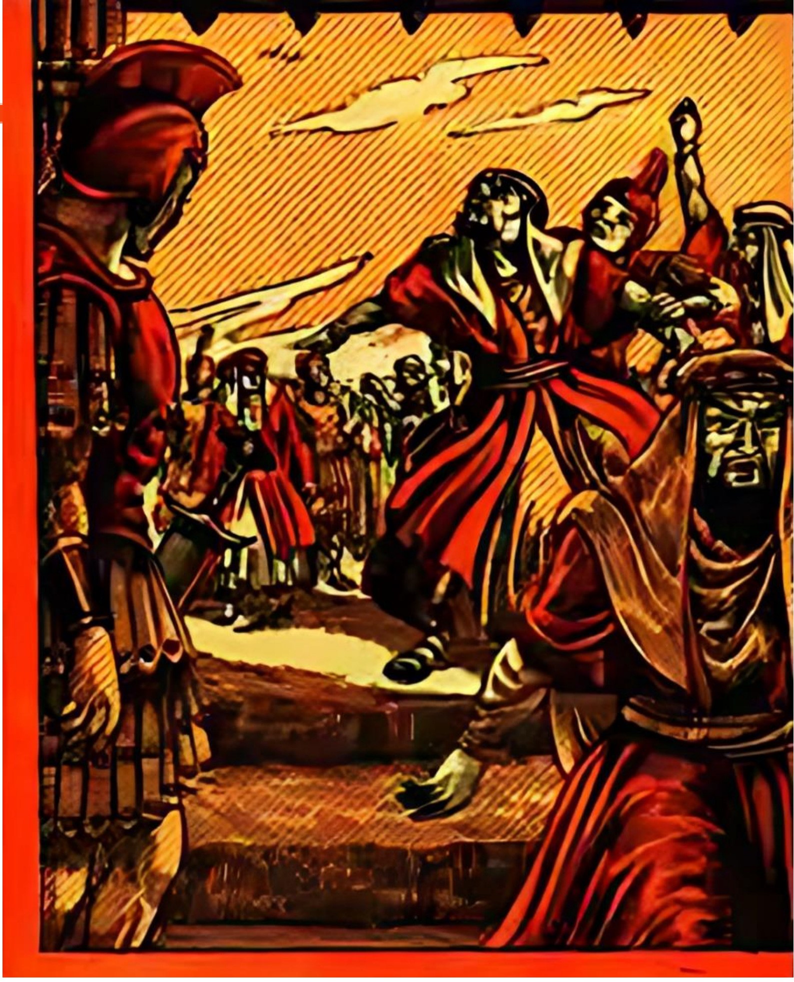

"यह नीच हार से डरकर, अरेविया के लिए न लड़कर, अब यहाँ आकर छुपा हुआ है।" सोचकर उन्होंने शत्रुओं से कहा-"यह जबाबल का नौकर नहीं है। खालीद की सेना का बदावी है। तुरन्त ग्रीक सैनिकों ने कनाना को बाँध दिया और उसको मान्यूल के पास ले गये।

उससे पहले ही मान्यूल को मालुम हो गया था कि किसी ने जबाबल की सेमा और उसकी सेना के बारे में भेद शत्रु को पहुँचा दिया थे। इसलिए कनाना को

जिम्मेवार समझ, उसे मारने के लिए वह अपनी तलवार लेकर लपका।

कनाना ने अपराध स्वीकार तो कर लिया, परन्तु तलवार के कारण डरा नहीं। "क्या तुझे मरने से डर नहीं है?" मान्यूल ने पूछा।

"मुझे डर नहीं है।" कनाना ने कहा।

"इसके लिए मौत की सज़ा काफी नहीं है। इसकी बोटी-बोटी कटवानी होगी। इसको ले जाकर कहीं रखो।" मान्यूल ने अपने सैनिकों से कहा।

दूसरे और तीसरे दिन भी युद्ध में किसी की विजय न हुई। बदावी जी जान से,"अरेबिया के लिए, अल्लाह के लिए" लड़ रहे थे। इस बार एक सैनिक भी नहीं भागा। ग्रीक सेना को ऐसा लगा, जैसे वे पहाड़ से लड़ रहे हों। वे एक कदम भी आगे न रख पाये। बदावी सेना भी एक कदम पीछे न हटी।

स्वालीद ने सोचा कि चौथे दिन मालूम हो जायेगा कि विजय किसकी होती है। परन्तु उसके दिल में विश्वास जाता रहा था कि वह जीतेगा। वह न चाहता था

कि युद्ध में और कुर्बान हों, उसने अपने को कुर्बान करने की ठानी।

सैनिकों के पीछे जो स्त्रियाँ व बच्चे आ रहे थे- खालीद ने उनको, उस रात भेज देना का निश्चय किया। उनको जितनी दूर सम्भव था, उतनी दूर भेजकर, वह और उसकी तरह देश के लिए आहुति होने को तैयार उसके सैनिक युद्ध भूमि में जायेंगे। बाकी सैनिक मक्का-मदीना जायेंगे। कम से कम उस पवित्र स्थलों को शत्रु के हाथ में पकड़ने से बचायेंगे। यह खालीद की योजना थी। उसने कभी हार न खाई थी। न कभी वह युद्ध भूमि से पीछे ही हटा था। इस बार भी वह पीछे हटानेवाला न था।

*   *   *   *

मान्यूल के शिविर में भी कल होनेवाले युद्ध के बारे में भय था। किसी के मुख पर उत्साह न था। आशा न थी। उस शिविर में जितने सैनिक थे, वे सब मैदान में देखे गये। युद्ध में खड़े होकर मुकाबला करना जितना मुश्किल था, उतना ही भागना।

सेनापतियों में भी यों बातचीत हुई-"हमारे पास रसद पहुँचने के लिए कम से कम तीन दिन लगेंगे। हमें बिल्कुल

आशा नहीं है कि कल हमारे सैनिक मैदान में लड़ेंगे।

अगर हमने शत्रु को यह विश्वास दिलाया कि हज़ारों में मुसलमान हमारी सेना में मिल रहे हैं, तो उनके पैर उखड़ जायेंगे।" एक अधिकारी ने कहा।

तुरत मान्यूल ने अपने सैनिकों से कहा-"उस भेदिये को यहाँ लाओ। युद्ध के कैदियों से कह दो कि जो हमारे साथ लड़ेंगे उनको रिहा कर दिया जायेगा। अगर किसी ने ऐसा न किया तो उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये जायेंगे।"

कनाना को मान्यूल के सामने लाया गया। दो दिन से न उसने कुछ खाया था, न पिया था, वह बहुत कमजोर नजर आता था।

"मैं तुम्हें कटवाने जा रहा हूँ। अगर कुछ कहना है, तो अभी कह लो।" मान्यूल ने कनाना से कहा।

"हुजूर, युद्ध के कैदियों में एक बूढ़े को देखा है। चाहे तो आप मुझे दुगना सतायें पर उस बूढ़े को छोड़ दीजिये।" कनाना ने कहा।

"कौन है वह बूढ़ा?" मान्यूल ने पूछा।

"सफेद लम्बी दाढीवाला। उस तरह का कैदी कोई दूसरा नहीं है।" कनाना ने कहा।

"तुम्हारा उसके साथ क्या सम्बन्ध है?" मान्यूल ने पूछा।

"वे मेरे पिता हैं।" कनाना ने कहा।

मान्यूल ने बूढ़े कैदी को बुलवाया। "क्या यही तेरा पिता है?" उसने पूछा। कनाना ने सिर हिलाकर कहा-"हाँ!"

मान्यूल ने कनाना से कहा-"हमें तुम्हारे कारण बहुत मुसीबतें उठानी पड़ीं।

तुम्हारी जानकारी देने के कारण, खालीद जबाबुल को पूरी तरह हरा सका। अगर तुमने हमारे भेद खालीद के पास न पहुँचा दिये होते तो हम अब तक मक्का मदीना पहुँच गए होते। तुमने हमें बहुत धोखा दिया है। हमें बहुत हानि पहुँचाई है। परन्तु तुम वीर हो, तुम्हारी जितनी बहादुरी मुझे खालीद में भी न दिखाई दी। इसलिए मैं तुम्हारे और तुम्हारे पिता के प्राण बचाऊँगा। पर तुम्हें जो मैं कहूँगा वह करना होगा। सूर्य के उदय होने के समय इस पहाड़ के किनारे खड़े होकर एक भाले को घुमाते हुए जोर से अपने पिता और अपना नाम लेकर कहो-'एक और घण्टे में तीस हजार अरब ग्रीक सेना के साथ युद्ध में आ रहे हैं।' फिर इस भाले से एक अरब को मारो। अगर तुमने यह किया तो मैं तुम्हें और तुम्हारे पिता को छोड़ दूँगा। तुम्हें अच्छी जागीर दूँगा। अगर तुमने, जो मैने कहा है, नहीं किया, तुम्हें और तुम्हारे पिता को मरवा डालूँगा।"

जबतक यह सुनता रहा तबतक कनाना का पिता अपने लड़के के बारे में सन्देह करता रहा। अब उसने लड़के को देखकर कहा- "बेटा, कनाना! मैं तुम्हारे बारे में जाने क्या क्या सन्देह कर रहा था। परन्तु मुझ बूढ़े को बचाने के लिए तुम अपनी जाति को धोखा न दो। तुमने कभी भी भाला हाथ में नहीं लिया है। इस नीच की बात सुनकर कभी वह काम न करना।"

कनाना ने पिता की बात अनसुनी कर दी। उसने मान्यूल को देखकर कहा-"क्या सूर्योदय तक मुझे समय दे सकेंगे? मुझे तबतक सोचना है।" मान्यूल इसके लिए मान गया। उसने अपने सैनिकों से

कहा-"इसे पहाड़ी पर ले जाकर, अकेला बैठ कर सोचने दो।"

कनाना जाकर पहाड़ पर बैठ गया। उसने ध्यान से घाटी में देखा। उस घने अन्धेरे में उसे पता लगा कि अरब पीछे हट रहे थे। दूर डेरों का उखाड़ना और ऊँटों का दक्षिण की ओर जाना उसने देखा। इस तरह अरबों का पीछे हटना अरेबिया के लिए आत्महत्या की तरह था।

उसने अपनी कमीज़ में छुपाये हुए पेटी में से एक और टुकड़ा निकाल कर उस पर अपने खून से लिखा- "भागो मत। शत्रुओं की हालत बुरी है। उन पर पीछे से हमला करो।" लिख कर उसे कमीज़ में रखकर बैठ गया। सूर्योदय के समय एक सैनिक ने उसका कन्धा थपथपा कर कहा-"सूर्य उदय होनेवाला है।"

कनाना ने मान्युल के डेरे में प्रवेश करके कहा-"भाला दीजिये!" उसको एक भाला दिया गया। उसने उसे नीचे फेंक कर कहा- "क्या इससे भारी नहीं है?"

भारी भाले को लेकर पहाड़ के किनारे किनारे जाते, पेटी के टुकड़े को कमीज़ से निकाल कर भाले पर लपेटा।

उसके पीछे कुछ दूरी पर मान्यूल ने खड़े होकर कहा-"डरो मत, जो मैने कहा है अगर न किया तो तुम्हारे पिता की आँखें निकलवा दूँगा।"

कनाना ने मुड़कर न देखा। वह देखो, जो वहाँ घूम रहा है, खालीद है। क्या आप तब तक ठहर सकते हैं, जब तक उसका घोड़ा मेरे भाले की पहुँच तक आता है?"

"अरे वाह! अच्छे बहादुर लड़के हो।" मान्यूल ने कहा-" अगर तुमने खालीद को मार दिया, तो तुम्हें सोने से तुलवाऊँगा।"

जल्दी ही खालीद ने कनाना को पहाड़ी पर देखा। उसने और सैनिकों को पीछे छोड़ दिया। और अपने घोड़े को पहाड़ के पास ले गया।

"यही मौका है.... हूँ....।" मान्यूल ने कहा। कनाना भाले को धीमे से ऊपर उठाकर चिल्लाया-"मेरा पिता " मरुभूमि भयङ्कर" है। मेरा नाम कनाना है।" पीछे खड़े सब सैनिकों ने उसकी ओर देखा।

"एक और घण्टे में तीस हजार अरबों के साथ ग्रीक लड़ने जा रहें हैं।" कनाना ने कहा। फिर उसने पूरे जोर से भाले को

खालीद की ओर फेंका। जब तक वह बातें करता रहा खालीद हिला तक नहीं। भाला ठीक निशाने पर ही लगा। वह जाकर खालीद के घोड़े के माथे पर जाकर लगा। घोड़ा वहीं मर गया। खालीद घोड़े से उतर कर भाले को घोड़े के माथे से निकाल कर उसे लेकर सैनिकों की तरफ चला गया।

इस बीच नीचे खड़े अरब चिल्लाने लगे-"धोखेबाज़, गद्दार, कायर।" वे कनाना को गालियाँ देने लगे।

मान्यूल बहुत खुश हुआ। थोड़ी देर में यह पता लगा कि मैदान में केवल कुछ अरब पदाति ही रह गए थे। बाकी सब चल गए थे।

"जो सैनिक लड़ सके उनको मैदान में भेजो। ज़रूर हमारी जीत होगी।" मान्यूल ने कहा।

चौथे दिन युद्ध शुरु हुआ। पर उसे युद्ध नहीं कहा जा सकता था। बदावियों ने आगे बढ़ने में कोई उत्साह न दिखाया। और उनको पीछे भगाने की शक्ति मान्यूल के सैनिकों में न थी।

एक घण्टा हो गया। यकायक मान्यूल के सैनिकों के पिछले भाग में कोलाहल हुआ। दस हजार अरब घुड़सवार, बीस हज़ार ऊँट सवारों ने आकर पीछे से हमला किया।

मान्यूल और उसके सैनिकों को नाश करने में ठीक एक घण्टा लगा।

कराना ने एक ही एक बार भाला पकड़ा था, वह भी अरेबिया के लिए, अल्लाह के लिए। अरेबिया को जिस अहिंसा के योद्धा ने अकेला बचाया था, उसके भाले की पूजा अब भी अरववासी करते हैं।

[समाप्त]

बुद्ध चरित्र